अण्णा का आंदोलन शुभ है, बशर्ते वह आलोचकों से सीखें

अण्णा हजारे के अनशन की सफलता भारतीय लोकतंत्र के लिए शुभ संकेत है। लेकिन हम इस संकेत की इबारत पढ़ने को तैयार नहीं हैं। हिन्दुस्तानी मन में कुछ ऐसी ग्रंथी है कि हम संकेत को प्रमाण मान लेते हैं, शुभ परिवर्तन को युग परिवर्तन की तरह पेश करते हैं, हर अच्छे इंसान को देवता बना देते हैं। जाहिर है इस भक्तिभाव की परिणिती निराशा और कडुवाहट में होती है।

अण्णा हजारे और उनके अभियान के साथ यही हो रहा है। एक छोटी लेकिन महत्वपूर्ण सफलता को 'दूसरे स्वाधीनता संग्राम' और 'तहरीर चौक' जैसे लापरवाह रूपकों से नवाजना इसी ग्रंथी का परिणाम था। वर्ल्ड कप क्रिकेट और आईपीएल के बीच खाली बैठी टीवी चैनलों ने इस आंदोलन को जम कर भुनाया, मानो किसी क्रांति का आगाज हो रहा हो। ऐसी अतिशयोक्ति की प्रतिक्रिया होनी ही थी। अनेक संजीदा बुद्धिजीवियों और जनांदोलनों के मित्रों ने इस आंदोलन के चरित्र के बारे में संदेह व्यक्त किये हैं। अण्णा हजारे द्वारा नरेन्द्र मोदी के प्रशासन की तारीफ के बाद तो इस पूरे आंदोलन को प्रतिगामी और गैर-लोकतांत्रिक बताने का रिवाज चल निकला है। एक असंतुलन दूसरे असंतुलन को पैदा कर रहा है।

ऐसे में कुछ बुनियादी बात भूलने का खतरा है। इस अनशन की सफलता केवल अण्णा हजारे और उनके चंद समर्थकों की जीत नहीं है। इस आंदोलन में महानगरीय, अंग्रेजदां और सम्पन्न वर्ग का बोलबाला नहीं था। यह उन छोटे-बड़े जनसंगठनों और साधारण नागरिकों की विजय है जिन्होंने अपनी पहल पर दिल्ली या अपने शहर-कस्बे में इस अभियान में शिरकत कर सदाचार की आवाज बुलंद की। यह उन लाखों हिन्दुस्तानियों की विजय है जिन्होंने मन ही मन अन्ना हजारे को सफलता की दुआ दी थी। शुरुआत में यह अनशन जरूर लोकपाल विधेयक के बारे में था। लेकिन जनमानस में यह आंदोलन शीर्ष राजनीति के भ्रष्टाचार के खिलाफ ईमानदारी की जमीनी आवाज के प्रतीक के रूप में दर्ज हुआ। इस आंदोलन के अधिकांश समर्थकों को लोकपाल बिल के बारे में ज्यादा जानकारी भी नहीं रही होगी। उनके लिए असली परिणाम यह नहीं है कि बिल पर पुनर्विचार के लिए एक कमेटी बन गई है। देश भर में लाखों लोगों के लिए इस आंदोलन ने यह संदेश दिया है कि लोकशक्ति सत्ता को झुका सकती है। अगर यह आंदोलन असफल हो जाता तो न जाने कितने हिन्दुस्तानियों का मन टूटता, न जाने कितने युवजन मान बैठते कि इस व्यवस्था में भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज उठाना संभव नहीं है। लोकतंत्र में जनता का मनोबल और भागीदारी बढ़ाना लोकतंत्र संवर्धन का काम है। इस लिहाज से जन लोकपाल विधेयक का संघर्ष देश में लोकतंत्र संवर्धन का माध्यम बना है।

जीवंत प्रतीक न तो कभी भी मुकम्मल होते हैं न ही बेदाग। यह शाश्वत नियम इस आंदोलन पर भी लागू होता है। अण्णा हजारे के समर्थको का अति-उत्साह अक्सर राजनीति द्वेष के रूप में सामने आया, मानो लोकतंत्र में राजनीति एक बीमारी है। भ्रष्टाचार का विरोध करने वाले अक्सर अपने आप को पवित्र-पावन और बाकी दुनिया को हेय मान बैठते हैं, सोचते हैं कि इस कुंजी से दुनिया के सब ताले खुल जाएंगे। बाबा रामदेव की उपस्थिति कई आंखों की किरकिरी बननी ही थी। और चलते-चलते अण्णा ने नरेन्द्र मोदी की तारीफ में बयान दे डाला। जाहिर है इसके चलते इस आंदोलन को कड़े सवालों का सामना करना पड़ा है।

जमीन पर संघर्ष कर रहे कार्यकर्ताओं को अक्सर बुद्धिजीवियों की सैद्धांतिक आलोचनाओं से चिढ़ होती है। कई बार ऐसी आलोचनाएं जमीनी हकीकत की नासमझी से पैदा होती हैं। कुछ हद तक यह बात अण्णा हजारे के आंदोलन की आलोचना पर भी लागू होती है। इस आंदोलन को संघ परिवार की उपज मानने वाले लोग जनांदोलनों की दुनिया की बारीकियों से नावाकिफ हैं। 'सिविल सोसायटी' के गलत मुहावरे के चलते इस आंदोलन की तुलना मुंबई के संभ्रांत एनजीओ जमावड़ों से करना भी नासमझी का लक्षण है। फिर भी केवल इसी वजह से आंदोलन की तमाम आलोचनाओं को खारिज कर देना तंगदिली और अपरिपक्वता का नमूना होगा। गंभीर आलोचनाओं को समझना और उनसे सीखना इस आंदोलन के भविष्य के लिए बेहद जरूरी है।

असली सवाल यह है कि क्या यह आंदोलन लोकतंत्र की जड़ें मजबूत करेगा, याकि यह जड़ें खोदने वाला काम है? अनेक सदाशय आलोचकों को इस आंदोलन की नीयत और नतीजों के बारे में शक है। आलोचनाएं चार तरह की हैं। पहली यह कि इस आंदोलन के तौर तरीके गैर लोकतांत्रिक हैं चूंकि आमरण अनशन तो ब्लैकमेल है। दूसरी आलोचना यह कि आंदोलन इकहरा है, ऐसा समझता है कि भ्रष्टाचार एकमात्र मुद्दा है। तीसरी कि यह आंदोलन राजनीति द्वेष से प्रेरित है, कि राजनेता और चुने हुए प्रतिनिधियों के बारे में द्वेष फैला कर आंदोलनकारी लोकतंत्र की बुनियाद कमजोर कर रहे हैं। चौथी बात यह कि आंदोलन द्वारा

प्रस्तावित विधेयक जिस किस्म का लोकपाल सुझाता है वह लोकतांत्रिक संस्थाओं को मजबूत करने की बजाय उनका विकल्प बन जाएगा। इन चारों बिंदुओं पर संजीदगी से गौर करने की जरूरत है।

आमरण अनशन के जरिए ब्लैकमेल वाले तर्क में एक बुनियादी खामी है। जब अण्णा हजारे भ्रष्टाचार के सवाल पर अनशन करते हैं तो यह किसी सरफिरे द्वारा आत्मदाह की धमकी जैसी बात नहीं है। सार्वजनिक जीवन में अन्ना की एक हैसियत है। सदाचार के मामले में उनका बेदाग इतिहास है। अनशन की घोषणा और अनशन करते वक्त इसकी तमाम मर्यादाओं का पालन किया गया। पहले सरकार से बातचीत हुई थी। अनशन की पूर्व घोषणा की गई। अनशन में कुल मिलाकर अपने प्रतिद्वंद्वी के खिलाफ घृणा और मिथ्या प्रचार से बचा गया। ऐसे अनशन को सिर्फ ब्लैकमेल समझना हमारे सार्वजनिक जीवन की एक गौरवमयी परंपरा का तिरिस्कार करना होगा। इसमें दबाव का अंश जरूर है, लेकिन यह दबाव नैतिक है। अगर अण्णा हजारे की नैतिक आभा न होती या फिर सरकार की नेकनीयत असंदिग्ध होती तो इस अनशन का कोई असर नहीं होता।

आंदोलन के एकांगी होने वाली बात सही है, लेकिन यह कमी एक तरह से ऐसे किसी भी प्रयास में अंतर्निहित होती है। पिछले तीन दशक के सभी बड़े जनांदोलन एक-सूत्रीय रहे हैं। चाहे नर्मदा बचाओ आंदोलन हो या सूचना के अधिकार का आंदोलन, सबकी शुरुआत एक मांग से हुई है, समग्र विचार से नहीं। इस शुरुआती दौर में ऐसे आंदोलनों में यह गलतफहमी रहती है मानो उनका सवाल देश और दुनिया का सबसे बड़ा सवाल है। अण्णा हजारे के समर्थकों में भी यह गलफहमी है मानो राजनीतिक भ्रष्टाचार इस देश की सभी समस्याओं की गंगोत्री है और लोकपाल उस परनाले को बंद कर देगा। यह उम्मीद की जा सकती है कि नर्मदा बचाओ आंदोलन और सूचना के अधिकार के आंदोलन की तरह यह आंदोलन भी एक व्यापक दृष्टि विकसित करेगा। भ्रष्टाचार के सवाल को पूरी व्यवस्था के चरित्र से अलग करके नहीं देखा जा सकता। जिस समाज की अर्थव्यवस्था निपट स्वार्थ और समाज गहरी विषमता और अलगाव को बढ़ावा देता हो उस समाज में भ्रष्टाचार कोई अनहोनी बात नहीं है। जहां सारी संस्थाएं जीर्ण क्षीण हों और भ्रष्टाचार में लिप्त हों, वहां केवल राजनीति सदाचार का द्वीप बनकर नहीं रह सकती। देर सबेर भ्रष्टाचार के सवाल को व्यवस्था सुधार के इन बुनियादी सवालों से जोड़ना होगा।

इस आंदोलन में अभी तक शायद यह समझदारी नहीं बन पाई है। फिलहाल व्यापक सरोकारों के बारे में फुटकर और विरोधाभासी बयान आए हैं। अण्णा हजारे का मोदी की तारीफ वाला बयान भी महत्वपूर्ण बनता है जब हम उन्हें एक नायक बनाकर समग्र समझ की उम्मीद लगाते हैं। लेकिन मंच पर भारत माता की छवि और राष्ट्रभक्ति की भाषा के आधार पर इसे संघ परिवार द्वारा संचालित आंदोलन मान लेना भूल होगी। कई बार सेकुलरवादी और प्रगतिशील तबका हिंदी के मुहावरे और राष्ट्रभक्ति के हर बयान को संघ परिवार कि बपौती मान बैठता है। अगर इस आंदोलन के साथ बाबा रामदेव नुमा लोग थे तो साथ में समता के मूल्य से प्रतिबद्ध अनेक जनांदोलन भी जुड़े हुए थे। फिलहाल इस आंदोलन की व्यापक समझ के बारे में कोई पक्की राय नहीं बनाई जा सकती।

राजनीति द्वेष वाले आरोप में दम है। इस आंदोलन में शुरू से ही अपने-आपको गैर-राजनैतिक बताया। इसके चलते शहरी मध्यमवर्गीय समाज का राजनीति विरोधी तबका इससे जुड़ गया। अण्णा हजारे ने अपने बयानों में कुछ सतर्कता भले ही बरती हो, लेकिन अति उत्साही समर्थकों ने अक्सर राजनीति विरोधी असंयमित भाषा का प्रयोग किया। ऐसा माहौल बनाया मानो सब नेता और जनप्रतिनिधि चोर है और देश का उद्धार उन्हें दरकिनार करके ही किया जा सकता है। यह एक खतरनाक सोच है। यह सही है कि लोकतांत्रिक राजनीति केवल चुनावों और संसद के भीतर सिमट नहीं सकती। लोकतंत्र में जमीनी संघर्ष की भूमिका हमेशा बनी रहती है। भारत जैसे देशों में लोकतंत्र का मॉडल अभी पूरी तरह बना नहीं है। इसे हिन्दुस्तानी आबोहवा के हिसाब से ढालने में जन-संघर्षों की भूमिका अपरिहार्य है। लेकिन इस आधार पर यह मान बैठना भूल होगी कि नेता, पार्टियां और जनप्रतिनिधि फिजूल हैं। देर-सबेर इस आंदोलन को एक राजनैतिक दृष्टि बनानी होगी। इस देश को वैकल्पिक राजनीति चाहिए, राजनीति के विकल्प नहीं।

जन लोकपाल बिल की खामियों पर भी गंभीर आत्म विश्लेषण की जरूरत है। इसमें कोई शक नहीं कि सरकारी लोकपाल बिल लचर है और उससे इस व्यवस्था में सुधार की उम्मीद नहीं की जा सकती। ऐसे में एक सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान लोकपाल का विचार मन को गुदगुदाता है। लेकिन अंततः लोकतंत्र में सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान संस्थाओं के लिए कोई जगह नहीं है। राजनीति में सुधार के तमाम प्रस्ताव अक्सर इस बीमारी का शिकार रहे हैं। कड़े कानून के लालच में एक समस्या खत्म होती है

तो नई समस्या पैदा हो जाती है। उम्मीद करनी चाहिए कि बिल की समीक्षा करने वाली समिति में जनांदोलनों के पंच इस मायने में ज्यादा समझदारी दिखाएंगे।

अण्णा हजारे के आंदोलन का भारतीय लोकतंत्र पर क्या असर पड़ता है यह आज-कल में तय नहीं होगा। यह इससे तय होगा कि यह आंदोलन उपरोक्त आलोचनाओं से क्या सबक ले सकता है। यह इस पर निर्भर करेगा कि इस आंदोलन के जरिए आई नई ऊर्जा अपने लिए क्या राजनैतिक भूमिका तय करेगी। आज इस आंदोलन से आशा बंधती है तो आशंकाएं भी उपजती है। इतिहास के पन्नों में अण्णा हजारे का आंदोलन कैसे दर्ज होगा, यह इस पर निर्भर करेगा कि आज की घटनाओं पर भविष्य की परछाई कैसे पड़ेगी। ० -योगेन्द्र यादव